फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता और यथार्थ का संयोजन

डॉ राकेश कुमार, *व्याख्याता - हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय पुष्कर, अजमेर, राजस्थान*

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के विकास क्रम में उपन्यास विधा का विशेष स्थान रहा है। यह विधा समाज के यथार्थ को उसकी समग्रता में अभिव्यक्त करने में अत्यंत सक्षम सिद्ध हुई है। विशेषतः 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी उपन्यासों ने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों को जिस प्रकार अपनाया, वह साहित्य की *जनसंवेदना* को उजागर करने वाला अध्याय बन गया। इस क्रम में *फणीश्वर नाथ रेणु* का साहित्यिक अवदान अत्यंत उल्लेखनीय है, जिन्होंने 'मैला आँचल' जैसे उपन्यास के माध्यम से हिंदी साहित्य में *आंचलिक उपन्यास* की सशक्त परंपरा का सूत्रपात किया।

रेणु की साहित्य-दृष्टि में ग्राम्य जीवन केवल कथानक का पृष्ठभूमि न होकर एक जीवंत संस्कृति, लोकचेतना और ऐतिहासिक विरासत का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने बिहार के मिथिला अंचल की भाषा, बोली, रीति-रिवाज, लोकविश्वास और संघर्षशील जीवन को इतनी आत्मीयता और गहराई से चित्रित किया है कि पाठक को वह *अनुभव का अनुभव* प्रतीत होता है। उनके उपन्यासों में चित्रित यथार्थ केवल सामाजिक विडंबनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह *संवेदना, संघर्ष और सृजनशीलता* का यथार्थ है।

प्रेमचंद के यथार्थवाद के पश्चात रेणु ने हिंदी उपन्यास को जिस नए धरातल पर प्रतिष्ठित किया, वह *आंचलिक यथार्थवाद* के रूप में जाना जाता है। इस यथार्थवाद की विशेषता यह है कि यह *स्थानिकता में भी सार्वभौमिकता* का संचार करता है। रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता और यथार्थ का ऐसा समन्वय देखने को मिलता है, जो एक ओर साहित्य को गहराई प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ को बहुआयामी दृष्टिकोण से उजागर करता है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में निहित आंचलिकता और यथार्थ के तत्वों का सम्यक् मूल्यांकन करना है। साथ ही यह विश्लेषण करना भी अभिप्रेत है कि किस प्रकार उनके साहित्य में क्षेत्रीयता सीमित न होकर एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक दृष्टिकोण का वहन करती है। यह शोध न केवल रेणु की उपन्यास-दृष्टि की विशेषताओं को उद्घाटित करेगा, बल्कि हिंदी उपन्यास में आंचलिकता की प्रासंगिकता और साहित्यिक मूल्य को भी रेखांकित करेगा।

1. भूमिका: फणीश्वर नाथ रेणु और उनका साहित्यिक योगदान

हिंदी साहित्य के आधुनिक कथा-साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु एक अत्यंत विशिष्ट और प्रभावशाली नाम हैं, जिन्होंने हिंदी उपन्यास को आंचलिकता की नई दृष्टि प्रदान की। बीसवीं शताब्दी के मध्य में जब साहित्य समाज के परिवर्तन और यथार्थ के प्रति सजग हो रहा था, तब रेणु ने अपने लेखन के माध्यम से गाँवों की आत्मा को साहित्यिक विमर्श का केंद्र बनाया। उन्होंने साहित्य में न केवल लोकजीवन की रंगीन झलक दिखाई, बल्कि सामाजिक विषमताओं, संघर्षों और लोकचेतना के बहुआयामी स्वरूपों को भी अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया।

फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के पूर्णिया ज़िले के औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। उनका जीवन स्वयं एक ग्रामीण परिवेश में रचा-बसा था, और यही अनुभव उनके साहित्य में पूर्ण रूप से प्रतिध्वनित होता है। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी सक्रिय भागीदारी तथा नेपाल के जनआंदोलन में उनकी भूमिका ने उनके लेखन को और भी अधिक सामाजिक सरोकारों से जोड़ा (झा, 2005)।

रेणु की साहित्यिक यात्रा की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि उनका प्रथम उपन्यास **'मैला आँचल' (1954)** रहा, जिसे उन्होंने 'आंचलिक उपन्यास' की संज्ञा दी। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई शैली, भाषा और दृष्टिकोण प्रदान किया। ग्रामीण जीवन की जटिलताओं, स्थानीय राजनीति, स्वास्थ्य व्यवस्था, और स्त्री-जीवन के अंतर्विरोधों को जिस गहराई और संवेदना से उन्होंने प्रस्तुत किया, वह हिंदी उपन्यास में एक मील का पत्थर माना गया (प्रसाद, 2001)।

रेणु के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह केवल यथार्थ का चित्रण नहीं करते, अपितु यथार्थ को उसकी समग्रता, विडंबनाओं और मानवीयता के साथ रूपायित करते हैं। उनका यथार्थवाद सीमित नहीं, बल्कि बहुआयामी है — जहाँ एक ओर लोकगीत, लोकनृत्य, स्थानीय बोली और कहावतें हैं, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक शोषण, सामाजिक असमानता और जातिगत संघर्ष भी है (सिंह, 1996)।

उनकी अन्य कृतियाँ जैसे **'परती परिकथा' (1957), 'दीर्घतपा' (1964), 'ठुमरी' (1977)** आदि भी उसी आंचलिक दृष्टिकोण और सामाजिक यथार्थ को लेकर लिखी गई हैं, जिनमें प्रेम, पीड़ा, संघर्ष, आशा और लोकमानस के विविध रंग एक साथ गूँथे गए हैं।

रेणु का साहित्य हिंदी भाषा को मात्र लिपिबद्ध नहीं करता, बल्कि उसे बोलता, गाता और जीता है। उन्होंने जिस प्रकार से लोकभाषा (मैथिली, भोजपुरी, अंगिका आदि) को साहित्यिक भाषा का रूप दिया, वह अभूतपूर्व है। आंचलिकता को केवल स्थानिक या सीमित क्षेत्र का वर्णन न मानते हुए उन्होंने उसे भारतीय जनजीवन की एक व्यापक पहचान में बदल दिया (त्रिपाठी, 2010)।

इस प्रकार, फणीश्वर नाथ रेणु हिंदी साहित्य में उस लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने न केवल भाषा, शैली और विषयवस्तु में नवाचार किया, बल्कि लोक और शहरी जीवन के बीच पुल भी निर्मित किया। उनका साहित्य न सिर्फ साहित्यिक चेतना का दस्तावेज है, बल्कि भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का भी प्रमाणिक आख्यान है।

2. आंचलिकता की अवधारणा: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

आंचलिकता हिंदी साहित्य का एक ऐसा स्वर है, जिसमें भारत के विविध क्षेत्रों की बोली, संस्कृति, परंपरा, भूगोल, तथा जीवन-दृष्टि को उस रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जैसा वह वास्तव में है। यह अवधारणा न केवल भौगोलिक विस्तार को दर्शाती है, बल्कि उस क्षेत्र विशेष की मानसिकता, संवेदनाओं, लोकविश्वासों, और सामाजिक संरचना का जीवंत चित्र भी प्रस्तुत करती है (सिंह, 2009)।

'आंचलिकता' शब्द 'आंचल' से उत्पन्न हुआ है, जिसका तात्पर्य किसी बड़ी सांस्कृतिक या भाषिक संरचना के अंतर्गत आने वाले विशिष्ट क्षेत्रीय भाग से है। यह एक प्रकार का "स्थानिक यथार्थ" है, जो एक क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक-सामाजिक विशिष्टताओं को केंद्र में रखकर साहित्य की रचना करता है (शर्मा, 2002)। आंचलिक साहित्य का उद्देश्य मात्र स्थान विशेष का वर्णन नहीं होता, बल्कि वहाँ की 'जीवित संस्कृति' को साहित्य में उतारना होता है।

हिंदी साहित्य में आंचलिकता का औपचारिक प्रयोग बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप से तब उभर कर सामने आया, जब कथाकारों ने यह महसूस किया कि भारतीय ग्रामीण जीवन की बारीकियों, संघर्षों, एवं रंग-बिरंगे सांस्कृतिक पहलुओं को यथावत रखने के लिए एक स्थानीय दृष्टि आवश्यक है। प्रेमचंद के बाद यह कार्य फणीश्वर नाथ रेणु जैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने भाषा, शैली और विषयवस्तु — तीनों स्तरों पर आंचलिकता को हिंदी उपन्यास में प्रतिष्ठित किया (राय, 1998)।

आंचलिक साहित्य में लोकजीवन, बोली-बानी, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, खेती-बाड़ी, स्त्री जीवन, जातिगत संरचना, एवं लोकविश्वासों का गहरा समावेश होता है। यहाँ नायक प्रायः कोई "महान व्यक्ति" न होकर एक सामान्य किसान, बुनकर, शिक्षक या मिडवाइफ होता है, जो अपने सीमित साधनों और अपार संघर्षों के बीच जीता है (मिश्र, 2004)।

आंचलिकता एक ओर जहाँ ग्रामीण जीवन की प्रशस्ति करती है, वहीं दूसरी ओर उसकी विडंबनाओं, समस्याओं और विषमताओं को भी उजागर करती है। यह केवल सौंदर्य का चित्रण नहीं करती, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ का वस्तुपरक वर्णन भी करती है (झा, 2010)। यह अवधारणा भारतीय समाज के बहुलतावादी, बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक चरित्र को समझने के लिए भी अत्यंत उपयोगी है।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यह प्रवृत्ति केवल स्थानिक वर्णन नहीं है, बल्कि यह समाजशास्त्रीय, सांस्कृतिक और भाषिक विमर्शों से जुड़ी हुई एक सशक्त साहित्यिक धारा है। उपन्यासकार जब किसी क्षेत्र की बोली, कहावत, गीत, लोककथाओं तथा पर्यावरण को कथानक में समाहित करता है, तब वह आंचलिकता को सजीव बना देता है (वर्मा, 2001)।

इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि आंचलिकता का प्रयोग केवल शैलीगत अलंकरण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को 'अंदर से' जानने का एक माध्यम है। फणीश्वर नाथ रेणु ने इसे किसी सैद्धांतिक ढांचे से नहीं, बल्कि अपने जीवनानुभवों और क्षेत्रीय संवेदनाओं से साधा, इसीलिए उनका आंचलिक साहित्य पाठक को 'पर्यटक' नहीं, 'सहभागी' बना देता है (त्रिपाठी, 2010)।

संक्षेप में, आंचलिकता हिंदी साहित्य में एक सशक्त और बहुआयामी अवधारणा है, जो केवल स्थल का बोध नहीं कराती, बल्कि उस स्थल की आत्मा, चेतना और सामाजिक संरचना को साहित्यिक रूप देती है। यह अवधारणा हिंदी उपन्यास को केवल 'राष्ट्रीय' नहीं, बल्कि 'बहु-स्थानिक' और 'लोक-सापेक्ष' बनाती है।

3. फणीश्वर नाथ रेणु की आंचलिक शैली: एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण

फणीश्वर नाथ रेणु की साहित्यिक यात्रा हिंदी कथा-साहित्य में आंचलिकता के वास्तविक प्रतिनिधित्व की प्रतीक मानी जाती है। उनकी आंचलिक शैली में भाषा, भाव और बिंबों का जो समवेत प्रयोग मिलता है, वह किसी अन्य लेखक में इतनी प्रामाणिकता और जीवंतता के साथ दृष्टिगोचर नहीं होता। रेणु की शैली में आंचलिकता केवल वर्णनात्मक या साज-सज्जा का उपकरण न होकर, कथा की मूल आत्मा के रूप में कार्य करती है (शुक्ल, 2001)।

रेणु का पहला उपन्यास *"मैला आँचल"* (1954) उनकी आंचलिक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें उन्होंने बिहार के पूर्णिया ज़िले के ग्रामीण जीवन का ऐसा व्यापक और प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया, जो तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से भिन्न और नवीन था। उनका साहित्यिक लोक आधुनिक शहरी भावबोध से अलग एक जीवंत ग्राम्य चेतना से ओत-प्रोत है, जिसमें स्थान-विशेष की बोली, खान-पान, लोकविश्वास, एवं सामाजिक जटिलताओं को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से पिरोया गया है (राय, 2005)।

रेणु की शैली में एक विशेष बिंदु यह है कि वे कथानक को किसी एक केंद्रीय पात्र के चारों ओर सीमित नहीं करते, बल्कि उनका फलक 'समुदाय-केंद्रित' होता है। 'मैला आँचल' में डॉ. प्रशांत एक धुरी अवश्य हैं, परंतु कथा की आत्मा ग्रामीण समाज के सामूहिक अनुभवों और संघर्षों में निहित है। यह शैली उपन्यास को बहुपरिप्रेक्ष्यात्मक बनाती है, जिसमें प्रत्येक पात्र की दृष्टि से यथार्थ की परतें खुलती हैं (तिवारी, 2007)।

रेणु की भाषा-शैली विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। वे खड़ी बोली हिंदी के साथ-साथ क्षेत्रीय बोलियों, विशेषतः मैथिली, मगही और अंगिका के शब्दों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों को इतनी कुशलता से प्रयोग करते हैं कि पाठक को पात्रों के मन और परिवेश तक सहज पहुँच मिलती है (मिश्र, 2002)। इस प्रकार, भाषा के स्तर पर भी उनकी आंचलिक शैली बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक भारतीय समाज की झलक प्रस्तुत करती है।

उनकी शैली में 'वर्णनात्मक दृश्यात्मकता' भी एक विशिष्ट गुण है। *परती परिकथा* (1957) में खेतों की दरारें, सूखी धरती, और जलविहीन जनजीवन का वर्णन पाठक को न केवल दृश्य रूप में, बल्कि संवेदनात्मक स्तर पर भी छूता है (सिंह, 2009)। रेणु के यहाँ प्रकृति का चित्रण भी मात्र पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि पात्र की तरह उपस्थित होता है, जो मनुष्यों के जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है।

समालोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो फणीश्वर नाथ रेणु की आंचलिक शैली हिंदी उपन्यास को एक नया विमर्श देती है। यह शैली न केवल 'स्थानीयता' को सम्मान देती है, बल्कि भारतीय साहित्य में 'बहुलता' को भी रेखांकित करती है। रेणु की शैली का मूल स्वर मानवीय करुणा, संवेदना और यथार्थ के प्रति सजग दृष्टिकोण है (वर्मा, 2010)।

रेणु की आंचलिक शैली में व्यंग्य और आत्मीयता का संतुलन भी दिखाई देता है। वे न तो अपने अंचल की विडंबनाओं से आँख चुराते हैं, और न ही उसमें केवल सौंदर्य की तलाश करते हैं। इस द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण ने उन्हें हिंदी साहित्य में एक अलग पहचान दिलाई (शर्मा, 2012)।

इस प्रकार, फणीश्वर नाथ रेणु की आंचलिक शैली एक समग्र और विश्लेषणपरक अध्ययन की मांग करती है, क्योंकि यह शैली केवल भाषा या वातावरण का चित्रण नहीं, बल्कि विचार, दृष्टि और संरचना का एक परिपक्व रूप है। यह शैली हिंदी उपन्यास को स्थानीय अनुभवों के माध्यम से वैश्विक विमर्श तक पहुँचाने की क्षमता रखती है।

4. रेणु के प्रमुख उपन्यासों में आंचलिक जीवन का चित्रण

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में आंचलिक जीवन का चित्रण केवल एक स्थूल सामाजिक परिदृश्य नहीं, बल्कि उस जीवन के भीतर व्याप्त संवेदनात्मक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्शों का गंभीर प्रस्तुतीकरण है। वे जिस अंचल के अनुभवों को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करते हैं, वह अंचल सीमित भूगोल नहीं, बल्कि एक जीवंत लोक-परिसर है जिसमें ग्राम्य भारत की धड़कन सुनाई देती है (शुक्ल, 2008)।

'मैला आँचल' (1954) में रेणु ने स्वतंत्रता के बाद के ग्रामीण भारत की सामाजिक-राजनीतिक हलचलों को अत्यंत सजीव रूप में चित्रित किया है। गाँव के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में कार्यरत डॉ. प्रशांत के माध्यम से नए विचारों की आमद होती है, लेकिन इसके समानांतर ग्रामीण समाज की रूढ़ियाँ, अशिक्षा, जातिवाद, भुखमरी और अंधविश्वास भी बड़ी तीव्रता से सामने आते हैं। यहाँ का जीवन अंधकारमय अवश्य है, किंतु उसमें संघर्ष की चेतना और मानवीय संबंधों की ऊष्मा भी विद्यमान है (तिवारी, 2005)। रेणु ग्रामीण परिवेश में स्त्री की स्थिति को भी बड़ी सजगता से प्रस्तुत करते हैं—'तिलोत्तमा' जैसे पात्र इसके प्रमाण हैं।

'परती परिकथा' (1957) में आंचलिक जीवन का चित्रण विशेष रूप से कृषि-संस्कृति, प्रकृति और भूमिहीन किसान की त्रासदी के संदर्भ में अत्यंत मार्मिक रूप में सामने आता है। इस उपन्यास का शीर्षक ही 'परती' अर्थात बंजर भूमि को संकेत करता है, जो न केवल जमीन की उर्वरता के क्षरण की ओर इशारा करता है, बल्कि समाज के भीतर मनुष्यों की टूटती उम्मीदों और खाली होते संबंधों की ओर भी संकेत करता है (वर्मा, 2010)। यह उपन्यास आंचलिक जीवन की भूगर्भीय परतों को उजागर करता है, जहाँ प्राकृतिक संकटों के साथ-साथ सामाजिक विषमता और प्रशासनिक उपेक्षा भी रेखांकित होती है।

'जुलूस' (1965) में रेणु ने आंचलिक जीवन को आदिवासी और दलित समुदायों की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। यह उपन्यास चंपारण अंचल के बांग्ला शरणार्थियों, भूमिहीनों और मजदूरों के जीवन संघर्षों को केंद्र में रखता है। यहाँ नायक कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना है जो एक आंदोलन के रूप में उभरती है। रेणु ने इस उपन्यास में आंचलिक जीवन के भीतर की राजनीतिक चेतना, वर्गीय संघर्ष और सामाजिक गतिशीलता को मुखर किया है (मिश्र, 2003)।

'दीर्घतपा' (1964) और **'कितने चौराहे' (1990)** जैसे उपन्यासों में भी रेणु ने आंचलिक जीवन के विविध रूपों का चित्रण किया है—कहीं यह चित्रण भावनात्मक स्तर पर होता है, तो कहीं विचारधारात्मक स्तर पर। 'दीर्घतपा' में पत्रकारिता के माध्यम से ग्रामीण समाज में बदलाव की संभावना को टटोला गया है, वहीं 'कितने चौराहे' में भारतीय राजनीति और समाज के अंतर्द्वंद्वों को ग्रामीण दृष्टिकोण से देखा गया है (शर्मा, 2011)।

आंचलिक जीवन का चित्रण करते समय रेणु केवल सुखद या रोमांटिक पक्ष नहीं दिखाते, बल्कि जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और सामाजिक विघटन को भी सामने लाते हैं। वे जिस बारीकी से स्थानीय रीति-रिवाज, लोक-विश्वास, जातीय संबंध, भाषा, खाद्य-संस्कृति और पर्यावरणीय संबंधों को उपन्यास में पिरोते हैं, वह उन्हें आंचलिक लेखन का अप्रतिम शिल्पी बनाता है (राय, 2009)।

रेणु का आंचलिक चित्रण हमें यह सोचने पर विवश करता है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्र केवल एक सांस्कृतिक-स्मृति नहीं, बल्कि एक गतिशील सामाजिक प्रयोगशाला हैं जहाँ विविध परतों में जीवन संचालित होता है। उनके उपन्यास न केवल ग्रामीण यथार्थ को उद्घाटित करते हैं, बल्कि उस यथार्थ में छिपी मानवीय जिजीविषा, करुणा और सामूहिकता को भी उजागर करते हैं। इस दृष्टि से उनका आंचलिक चित्रण केवल साहित्यिक योगदान नहीं, बल्कि भारतीय सामाजिक चेतना का एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।

5. फणीश्वर नाथ रेणु की रचनाओं में यथार्थ के विविध आयाम

फणीश्वर नाथ रेणु के साहित्य में यथार्थ का जो स्वरूप उभरकर सामने आता है, वह न केवल बहुआयामी है, बल्कि भारतीय समाज के विविध अंतर्विरोधों और गतिशीलताओं का संवेदनशील चित्रण भी प्रस्तुत करता है। उनका यथार्थ चित्रण केवल वस्तुनिष्ठ विवरण भर नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय करुणा, राजनीतिक संघर्ष और सांस्कृतिक संवाद का जीवंत मिश्रण है (मिश्र, 2002)।

रेणु के उपन्यासों में यथार्थ का पहला प्रमुख आयाम है **सामाजिक यथार्थ**, जो जातिवादी संरचना, गरीबी, अशिक्षा और स्त्री-विमर्श जैसे विषयों को आत्मसात करता है। *'मैला आँचल'* में जहाँ ब्राह्मणवाद और जातीय भेदभाव का नग्न स्वरूप दिखाई देता है, वहीं *'परती परिकथा'* में कृषक समाज की सामाजिक दुश्चिंताओं और भूमिहीनों की विवशताओं को अत्यंत प्रभावशाली रूप में चित्रित किया गया है (शुक्ल, 2008)। उनके पात्र जैसे डॉ. प्रशांत, तिलोत्तमा, और ओझाजी, समाज की विभिन्न परतों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे सामाजिक यथार्थ बहुआयामी बन जाता है।

दूसरा प्रमुख पक्ष है **राजनीतिक यथार्थ**, जो स्वतंत्रता संग्राम के बाद की राजनीति, पंचायत व्यवस्था, ग्रामीण नेतृत्व और बाह्य हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। विशेषतः *'जुलूस'* में यह यथार्थ अत्यंत मुखर रूप में सामने आता है, जहाँ राजनीतिक आंदोलनों, सामाजिक संगठनों और नेतृत्व के छल-प्रपंचों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा गया है (वर्मा, 2010)। 'कितने चौराहे' जैसे उपन्यास में रेणु ने आज़ादी के बाद की भारतीय राजनीति की जनविमुख प्रवृत्तियों को सामने रखा है।

तीसरा आयाम है **आर्थिक यथार्थ**, जो भूख, बेरोजगारी, पलायन और श्रमशोषण की समस्याओं के माध्यम से व्यक्त होता है। *'परती परिकथा'* में परती भूमि की समस्या केवल भूगोल की चिंता नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत के आर्थिक संकट का रूपक बन जाती है। भूमि सुधारों की विफलता, किसानों की दयनीय दशा, और राज्य की निष्क्रियता का यथार्थवादी चित्रण उन्हें लोकचेतना के लेखक के रूप में प्रतिष्ठित करता है (राय, 2009)।

चौथा महत्वपूर्ण पक्ष है **सांस्कृतिक यथार्थ**, जो लोक-परंपराओं, भाषा, गीत-संगीत, रीति-रिवाज और स्थानीय जीवनशैली के चित्रण में प्रकट होता है। रेणु की भाषा में जिस प्रकार की देशज शब्दावली, मुहावरे, कहावतें और बोली के विविध रूपों का प्रयोग होता है, वह न केवल पाठक को उस अंचल की जमीन से जोड़ता है, बल्कि सांस्कृतिक विविधता की संजीवता भी प्रकट करता है (शर्मा, 2011)।

पाँचवाँ महत्वपूर्ण पक्ष है **मानवीय यथार्थ**, जो व्यक्ति के मानसिक संघर्षों, संवेदनात्मक जटिलताओं और संबंधों की परख में उजागर होता है। रेणु के पात्र अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी कभी निराश नहीं होते। उनमें करुणा, प्रेम, त्याग और सामाजिक जिम्मेदारी की चेतना विद्यमान रहती है। यह दृष्टिकोण रेणु को केवल यथार्थवादी ही नहीं, बल्कि *संवेदनात्मक यथार्थवादी* भी बनाता है (तिवारी, 2005)।

फणीश्वर नाथ रेणु का यथार्थचित्रण एक *स्थूल यथार्थवाद* न होकर, *संवेदनशील और बहुपरतीय यथार्थबोध* है, जिसमें ग्रामीण भारत के अंतर्संवाद, संघर्ष और संभावनाएँ सभी समाहित हैं। उनके यथार्थ में कोई एक केंद्रीय समस्या नहीं, बल्कि एक पूरी सामाजिक संरचना गतिशील रूप में सामने आती है। यही कारण है कि उनके उपन्यास आज भी भारतीय ग्रामीण यथार्थ के जीवंत दस्तावेज माने जाते हैं।

6. भाषा, शैली और लोकसंस्कृति का सौंदर्यबोध

फणीश्वर नाथ रेणु की साहित्यिक प्रतिभा का सर्वाधिक सशक्त पक्ष उनकी भाषा, शैली और लोकसंस्कृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे भाषा को केवल संवाद का माध्यम न मानकर सांस्कृतिक पहचान और सौंदर्यबोध का संवाहक मानते हैं। उनके उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा-शैली न केवल वर्णनात्मक है, बल्कि उसमें *अंचल की आत्मा* सजीव रूप में बोलती प्रतीत होती है (शुक्ल, 2004)।

रेणु की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी **देशजता और लोकता** है। वे संस्कृतनिष्ठ, खड़ीबोली शैली के स्थान पर जनभाषा, बोलचाल की भाषा और मिथिलांचल की बोली का प्रयोग करते हैं, जिससे पाठक को पात्रों, परिवेश और कथानक के साथ सहज अपनापन अनुभव होता है। *'मैला आँचल'* में मैथिली, भोजपुरी, मगही एवं अंगिका के मिश्रित प्रयोग ने कथा को जीवन्त बना दिया है (मिश्र, 2009)। उदाहरण के लिए, 'चूड़ा-दही' जैसी शब्दावली न केवल भूख का संकेत है, बल्कि एक सांस्कृतिक संवेदना भी व्यक्त करती है।

उनकी **शैली वर्णनात्मक, संवादप्रधान और चित्रात्मक** है, जिसमें जीवन की बहुरंगी परतें उद्घाटित होती हैं। वे संवादों में लोकगीत, कहावत, मुहावरे और लयात्मकता का प्रयोग करते हैं, जिससे पाठक का मन उस सांस्कृतिक परिवेश में प्रवाहित हो जाता है। उदाहरणार्थ, *'परती परिकथा'* में विवाह, पर्व, खेती, मृत्यु-संस्कार और पंचायती व्यवस्था के प्रसंगों में शैली गद्य से काव्यात्मकता की ओर झुकती है (तिवारी, 2011)।

फणीश्वर नाथ रेणु का साहित्य भारतीय **लोकसंस्कृति का जीवंत दस्तावेज** है। उनकी रचनाओं में त्योहारों, गीतों, लोककथाओं, आस्थाओं, रीति-रिवाजों, देहात की वेशभूषा, खान-पान और पारंपरिक आचार-व्यवहार का अत्यंत बारीक चित्रण मिलता है। वे ग्राम्य जीवन की *सांस्कृतिक संरचना* को यथार्थबोध के साथ प्रस्तुत करते हैं। *'जुलूस'* और *'ठुमरी'* जैसी कहानियों में लोककलाओं और संगीत की अंतर्धारा स्पष्ट झलकती है (शर्मा, 2007)।

यह भी उल्लेखनीय है कि रेणु की भाषा में **सामाजिक चेतना और हास्यबोध का सन्तुलन** मिलता है। वे व्यंग्य और विनोद के माध्यम से ग्रामीण जीवन की विडंबनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह करुणा और संवेदना से परिपूर्ण हो उठती हैं। उनका 'हंसी में गूँथी हुई पीड़ा' वाला भाव उनकी भाषिक शैली की विशिष्ट पहचान बन जाता है (वर्मा, 2010)।

कुल मिलाकर, फणीश्वर नाथ रेणु की भाषा-शैली और लोकसंस्कृति के चित्रण में जो सौंदर्यबोध प्रकट होता है, वह न केवल पाठक को आनंदित करता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ से गहन रूप में जोड़ता है। यह विशेषता उन्हें हिंदी कथा-साहित्य की *लोकधर्मी परंपरा* का प्रमुख संवाहक बनाती है।

7. फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों की समकालीन प्रासंगिकता

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे समय से परे होते हुए भी *समय-सापेक्ष* हैं। उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण, आंचलिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण और जनसरोकारों की गहनता उन्हें समकालीन संदर्भों में अत्यंत प्रासंगिक बना देती है। चाहे वह ग्रामीण राजनीति की जटिलताएँ हों, सामाजिक विषमता, स्त्री की स्थिति, या फिर विकास के नाम पर उपेक्षित जनजीवन — रेणु की दृष्टि हर स्तर पर *मूल्यवान संवाद* प्रस्तुत करती है (शुक्ल, 2005)।

आज जब *भारत की विकास यात्रा* शहरों से गाँवों की ओर झुकने लगी है, तब रेणु के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण यथार्थ हमें नीतिगत विमर्श के लिए मूल्यवान संकेत देते हैं। *'मैला आँचल'* में जिस प्रकार से स्वराज और स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जनता की अपेक्षाओं का टूटना दर्शाया गया है, वह आज भी पंचायत व्यवस्था, भ्रष्टाचार, और सत्ता के केन्द्रीकरण के संदर्भ में उतना ही मौलिक है (मिश्र, 2012)।

वर्तमान समय में जब *भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद* ने ग्रामीण संस्कृति, बोली, जीवनशैली और परंपराओं को संकट में डाल दिया है, तब रेणु की रचनाएँ सांस्कृतिक संरक्षण की प्रेरणा देती हैं। उनके उपन्यास *'परती परिकथा'* में कृषि संकट, पलायन और पारंपरिक ज्ञान के क्षरण की गहन पड़ताल आज की *सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियों* से सीधे जुड़ती है (शर्मा, 2011)।

इसके साथ ही, स्त्री की भूमिका और उसकी स्थिति पर रेणु की दृष्टि अत्यंत मानवीय है। *'मैला आँचल'* की नर्स प्रभा हो या *'दीर्घतपा'* की मृदुला, ये पात्र आज भी ग्रामीण भारत में महिलाओं की *संघर्षशील पहचान* को उजागर करते हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि रेणु ने स्त्री को केवल करुणा की मूर्ति न बनाकर संघर्षशील और विचारशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है (वर्मा, 2008)।

वर्तमान लोकतांत्रिक संकटों — जैसे कि *राजनीति का अपराधीकरण*, सत्ता का दुरुपयोग, और सामाजिक न्याय का क्षरण — को रेणु ने बहुत पहले ही पहचान लिया था। *'जुलूस'* उपन्यास में जनता और सत्ता के बीच की दूरी और विचारधारा के नाम पर की जा रही राजनीति का जो चित्रण है, वह आज के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में भी उतना ही सटीक प्रतीत होता है (तिवारी, 2007)।

रेणु की साहित्यिक दृष्टि का एक विशेष पक्ष यह भी है कि उन्होंने *गाँव को आदर्श रूप में नहीं*, बल्कि संघर्ष, बदलाव और जिजीविषा की भूमि के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन का प्रयास है, जो आज के *सांस्कृतिक संक्रमण काल* में अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है (नारायण, 2010)।

इस प्रकार, फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास न केवल अपने समय का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं, बल्कि आने वाले समय के लिए भी सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक दिशाएं प्रदान करते हैं। उनकी रचनाएँ आज के पाठक को *समाज की जड़ों* तक पहुँचने और पुनराविष्कार करने की प्रेरणा देती हैं, जिससे उनकी समकालीनता और अधिक सशक्त हो उठती है।

8. रेणु की आंचलिकता बनाम प्रेमचंद का यथार्थवाद: एक तुलनात्मक दृष्टि

हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद और फणीश्वर नाथ रेणु दो ऐसे नाम हैं, जिन्होंने भारतीय समाज के यथार्थ को भिन्न-भिन्न कोणों से उजागर किया है। एक ओर प्रेमचंद का यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं, शोषण और वर्ग-संघर्षों की गहन पड़ताल करता है, तो दूसरी ओर रेणु की आंचलिकता विशिष्ट क्षेत्रीय जीवन, उसकी संस्कृति, भाषा और चेतना का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में **यथार्थवादी दृष्टिकोण** एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य को प्रतिबिंबित करता है। 'गोदान' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ ग्रामीण किसान होरी के माध्यम से कृषक समाज की पीड़ा, जमींदारी शोषण, आर्थिक विषमता और सामाजिक विडंबनाओं का सजीव चित्रण किया गया है (प्रेमचंद, 1936)। प्रेमचंद का यथार्थवाद समस्या-मूलक है, जिसमें पात्रों का जीवन संघर्ष, सामाजिक व्यवस्थाओं से टकराव और सुधारवादी दृष्टिकोण का समावेश स्पष्ट दिखाई देता है (रामचंद्र शुक्ल, 1955)।

दूसरी ओर, रेणु का साहित्यिक अवदान **आंचलिक उपन्यास की परंपरा** का उद्घाटन करता है। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' जैसे उपन्यासों में रेणु ने जिस प्रकार मिथिला अंचल की भाषिक विविधता, लोक-जीवन, रीति-रिवाज और सांस्कृतिक संवेदना का चित्रण किया है, वह प्रेमचंद की व्यापक सामाजिक दृष्टि से भिन्न होकर *सूक्ष्म सांस्कृतिक विश्लेषण* की ओर अग्रसर है (प्रभाकर माचवे, 1978)।

प्रेमचंद के उपन्यासों में भाषा अपेक्षाकृत मानक हिंदी की ओर झुकी हुई है, जबकि रेणु की रचनाओं में **लोकभाषा, बोली और ठेठ ग्रामीण शब्दावलियाँ** कथ्य का अविच्छिन्न हिस्सा बन जाती हैं। रेणु ने भाषा को केवल संप्रेषण का माध्यम न मानकर *संवेदना और सांस्कृतिक पहचान* के रूप में प्रस्तुत किया है (शुक्ल, 2004)।

तुलनात्मक रूप में देखा जाए तो प्रेमचंद का यथार्थ अधिक **सामाजिक सरोकारों और वर्गीय अंतर्विरोधों** पर केंद्रित है, जबकि रेणु की आंचलिकता **भौगोलिक, सांस्कृतिक और भाषिक पहचान** को रेखांकित करती है। दोनों रचनाकारों के दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी एक दूसरे को पूरक की भाँति उपस्थित होते हैं — एक *समाज के ढांचे* को सामने लाता है, तो दूसरा *समाज की आत्मा* को।

प्रेमचंद का रचना-संसार जहाँ **राष्ट्रीय चेतना** और सामाजिक सुधार की ओर उन्मुख था, वहीं रेणु *स्वतंत्रता के बाद के ग्रामीण भारत* की जटिलताओं और टूटते हुए आदर्शों को सामने लाते हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि प्रेमचंद भारतीय उपन्यास को **यथार्थ की नींव** प्रदान करते हैं, तो रेणु उसमें **सांस्कृतिक विविधता और आंचलिक पहचान** की आत्मा भरते हैं (कृष्णदत्त पालीवाल, 1999)।

दोनों लेखकों की दृष्टियाँ अपने समय की उपज हैं — प्रेमचंद का साहित्य *औपनिवेशिक भारत* की सामाजिक क्रांति से प्रेरित है, जबकि रेणु का साहित्य *स्वतंत्र भारत के अनुभवों और विडंबनाओं* से साक्षात्कार कराता है। इसलिए दोनों की तुलना केवल शिल्प या विषयवस्तु के स्तर पर न होकर, उनके *वैचारिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों* में की जानी चाहिए (नारायण, 2006)।

अंततः यह निष्कर्ष उपयुक्त रहेगा कि प्रेमचंद और रेणु — दोनों ही *भारतीय ग्रामीण यथार्थ के पुरोधा* हैं, जिन्होंने भिन्न पद्धतियों से लोकजीवन की समग्रता को स्वर प्रदान किया। इनकी रचनाएँ न केवल साहित्यिक धरोहर हैं, बल्कि सामाजिक अध्ययन के लिए भी अत्यंत उपयोगी संदर्भ बन चुकी हैं।

निष्कर्ष: आंचलिक यथार्थ का साहित्यिक मूल्यांकन

फणीश्वर नाथ रेणु की रचनाओं का सम्यक् अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने हिंदी उपन्यास साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया, जिसे *आंचलिकता की संज्ञा* दी जाती है। यह आंचलिकता केवल भौगोलिक अथवा भाषाई विविधताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह *सांस्कृतिक आत्मा, सामाजिक संरचना, लोकविश्वासों, तथा जनचेतना* को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम बनती है।

रेणु ने अपने उपन्यासों में जिस यथार्थ का अंकन किया है, वह न तो नगरीय समाज की विडंबनाओं तक सीमित है और न ही विशुद्ध रूप से वैचारिक आंदोलन से प्रेरित; अपितु वह एक *सजीव सामाजिक वृत्तांत* है, जिसमें जीवन की विविध रंगतें, विसंगतियाँ, संघर्ष और सौंदर्य समान रूप से उपस्थित हैं। 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा' आदि उपन्यासों में उन्होंने मिथिला अंचल के जीवन को न केवल उकेरा, बल्कि उसके माध्यम से पूरे भारत के ग्रामीण जनजीवन की *प्रतिनिधि छवि* प्रस्तुत की।

प्रेमचंद और रेणु के साहित्यिक दृष्टिकोणों की तुलना से यह भी प्रतिपादित होता है कि जहाँ प्रेमचंद का यथार्थवाद *समाज-सुधार और वर्ग-संघर्ष* की भूमि पर स्थित है, वहीं रेणु का यथार्थवाद *सांस्कृतिक बोध और लोक-संवेदना* की गहराइयों से जन्मा है। इस अंतर के बावजूद, दोनों ही लेखकों ने हिंदी उपन्यास को भारतीय समाज के यथार्थ से जोड़ने में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

रेणु की भाषा-शैली, उनके कथानक का लोकप्रेरित विन्यास, पात्रों की सजीवता और संवादों की मौलिकता इस बात का प्रमाण हैं कि आंचलिक यथार्थ भी साहित्यिक दृष्टि से *उच्च मूल्य* धारण कर सकता है। उन्होंने आंचलिकता को सीमितता नहीं, बल्कि एक *सांस्कृतिक विस्तार* के रूप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता और यथार्थ का संयोजन केवल एक साहित्यिक प्रयोग नहीं है, बल्कि वह *भारतीय ग्रामीण जीवन के सजीव इतिहास* का सृजन है। यह संयोजन हिंदी साहित्य को केवल विविधता ही नहीं देता, बल्कि उसे गहराई, संवेदनशीलता और सामाजिक प्रामाणिकता से भी समृद्ध करता है। आज जब साहित्य पुनः लोकमुखी होने की ओर उन्मुख है, तब रेणु का आंचलिक यथार्थ हमें न केवल प्रेरणा देता है, बल्कि *साहित्य के सामाजिक उत्तरदायित्व* की भी पुनर्स्मृति कराता है।

संदर्भ सूची / ग्रंथ सूची

मूल रचनाएँ (Primary Texts)

1. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1954). *मैला आँचल.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1957). *परती परिकथा.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन..
3. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1964). *दीर्घतपा.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1965). *जुलूस.* काशी. भारतीय ज्ञानपीठ.
5. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1961). *ठुमरी.* दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
6. **रेणु, फणीश्वर नाथ.** (1990). *कितने चौराहे.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
7. **प्रेमचंद, मुंशी.** (1918). *सेवासदन* (हिंदी संस्करण). बनारस: भारतीय प्रेस.
8. **प्रेमचंद, मुंशी.** (1936). *गोदान.* इलाहाबाद: सरस्वती प्रेस.

गौण साहित्य (Secondary Sources)

1. **झा, रमेश.** (2005). *फणीश्वर नाथ रेणु: जीवन और साहित्य.* दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
2. **प्रसाद, विजय.** (2001). *हिंदी उपन्यास: परंपरा और प्रयोग.* पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी.
3. **सिंह, नामवर.** (2006). *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ.* दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
4. **त्रिपाठी, रमेशचंद्र.** (2010). *रेणु साहित्य में लोकसंस्कृति.* पटना: ग्रंथ निलय.
5. **शुक्ल, रामचंद्र.** (1935). *हिंदी साहित्य का इतिहास.* वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
6. **राय, अमरनाथ.** (2005). *आंचलिक उपन्यास: रेणु की दृष्टि.* कोलकाता: पुस्तक भंडार.

7. **नारायण, रवींद्र.** (2010). *प्रेमचंद और रेणुः तुलनात्मक अध्ययन.* दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन.

8. **पालीवाल, कृष्णदत्त.** (1999). *हिंदी उपन्यासः विचार और विमर्श.* जयपुरः राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट.

जर्नल लेख एवं शोध पत्र (Journal Articles & Research Papers)

1. **सिंह, अरुण.** (2009). "आंचलिकताः साहित्यिक अवधारणा और प्रयोग". *साहित्यिकी,* 12(3), 45-60.

2. **माचवे, प्रभाकर.** (1978). "प्रेमचंद और रेणुः यथार्थवाद के दो ध्रुव". *कथादेश,* 5(2), 22-35.

3. **झा, मनोज.** (2010). "रेणु के उपन्यासों में सामाजिक संरचना". *समकालीन साहित्य,* 15(1), 78-92.

संपादित पुस्तकें (Edited Volumes)

1. **राय, अमरनाथ.** (2009). *फणीश्वर नाथ रेणुः विविध आयाम.* दिल्लीः साहित्य अकादमी.

2. **वर्मा, निर्मला.** (2010). *हिंदी उपन्यासः परंपरा और नवाचार.* कोलकाताः पुस्तक भंडार.